मीडिया का सच : यह सच नहीं है

डॉ.कविता आचार्य,सह आचार्य

राजकीय कन्या महाविद्यालय, भरतपुर।

आज का मनुष्य अपने अनुभव– संसार को अधिक से अधिक परिपूर्ण कर लेना चाहता है। वह चाहता है कि उसका अनुभव– जगत भी परिपूर्ण हो जाये और मनोंरजन भी साथ – साथ होता रहे। इसी हेतु की पूर्ति के लिए प्रसारण माध्यम और पत्रकारिता उसके सहयोगी बनते है। प्रसारण माध्यमों में टी.वी. रेडियो, और सिनेमा, बेब इन्टरनेट सबसे प्रमुख माध्यम है, तो मुद्रित माध्यम के रूप में पत्रकारिता के विविध रूप हमारे सामने है। मैं कह सकता हूँ कि टी.वी. पत्र–पत्रिकाऐं और सिनेमा, रेडियों, वेब, इन्टरनेट आदि ने न केवल मनुष्य की जिज्ञासाओं को शांत किया है, अपितु न जानने के उसके अभाव को भी पूरा किया है, तो दूसरी और इसके समानान्तर मनोरंजन प्राप्ति की मानवीय लालसा को भी पूरा किया है। कहा जा सकता है कि श्रव्य–दृश्य और लिखित या मुद्रित माध्यमों ने माननीय मनोरंजन की दुनिया में आमूल परिवर्तन कर दिया है। इसके साथ मनुष्य की तमामतर जिज्ञासाओं को शांत– तृप्त करके अधुनातन जानकारियों से मानव को जबरेज कर दिया है। मैं विश्वासपूर्वक कह सकता हूँ कि इलेक्ट्रोनिक और प्रिन्ट मीडिया का कोई न कोई रूप या माध्यम प्रायः प्रत्येक घर में मौजूद है। इस मौजूदगी को हम टी.वी., रेडियों, अखबार और पत्र–पत्रिकाओं के रूप में देख सकते है।

अपने विस्तार – प्रसार के आरंम्भिक काल में रेडियो, टी.वी., सिनेमा, पत्र–पत्रिकाओं आदि के द्वारा सामाजिक परिर्वन का महत् सपना देखा गया और निसन्देह इसमें कुछ सफलता भी मिली। मुझे याद करना चाहिए कि जाति – पांति तोड़कर स्वस्थ समाज के निर्माण के सपने के साथ अनेक फिल्में बनी। इन फिल्मों में सामाजिक सरोकारों का स्वर प्रमुख रूप से सुनाई देता था। यह स्वर चाहे अंतर जाति विवाहों के रूप में या अमीर – गरीब के बेटे–बुटियों के विवाह के रूप में सेल्यूलायड पर दिखाया जाता था, जिससे यह संकेत होता था कि जाति प्रथा अप्रासंगिक है, निर्थक है, अतः त्याज्य है। अमीर और अमीरी के अत्याचारों से नायक – नायिका (पंसंगत जो युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे) लड़ते – भिड़ते एवं विजयी होते हुये बताये जाते थे। एक सतत् संघर्ष की स्थिति थी अमीर एवं गरीब वर्ग के मध्य में जो युवकों को जाति प्रदा और अन्याय के विरोध में लामबन्द होने के लिए प्रेरित करती थी। लगभग यही स्थिति प्रिन्ट मीडिया की भी थी। प्रिन्ट मीडिया भी सामाजिक समरसता के संदेश का वाहक था। प्रिन्ट मीडिया के केन्द्र में स्वस्थ, समानताधारित समाज का सपना ही प्रमुख सपना था। सम्पादकगण या पत्रकार बन्धु सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए के मिशन के तहत कार्य करते थे।

कालान्तर में टी.वी., रेडियो, सिनेमा और पत्र – पत्रिकाओं की दुनिया का विस्तार हुआ और नयी से नयी प्रविधि का इस क्षेत्र में प्रयोग होने लगा। इसी दौरान आर्थिक

उदारीकरण की ऑधी में अधिक से अधिक धन कमाना उद्देश्य बन गया और सामाजिक समरसता के सरोकार अतीत के सपना हो गये। बाजार की मुनाफा प्रवृत्ति ने प्रसारण माध्यमों एवं प्रिन्ट मीडियो को भी अपनी लपेट– चपेट में ले लिया। जाति तोड़ों या अन्याय का प्रतिकार करों की भावना मुनाफावृत्ति की लालसा के जंगल में न जाने कहॉ खो गयी। ''बाजार'' मुनाफाखोरों का अखाड़ा बन गया और बाजार की इन शक्तिशाली गतिविधियों ने प्रच्छन्न तरीके से टी.वी. कम्प्यूटर, सिनेमा, वेब, इन्टरनेट आदि पर सवार होकर दुनिया के हरेक घर में अपनी घुसपैठ कर ली है। पूरा घर और समाज बाजार की इन शक्तियों के कब्जे में चला गया और रूचियों के परिष्कार के नाम पर हम मल्टीनेशन्स द्वारा उत्पादित अवांछित वस्तुओं के खरीददार बनने को मजबूर कर दिये गए है। जीवन का कोई सा भी क्षेत्र बाजार की इन कुटिल शक्तियों की पकड़ से छूटा हुआ नहीं रह सका है। यहां तक कि हमारे शयन कक्ष का एकान्त ओर अन्तरंगता के क्षण और क्रियाऐं भी बाजार के आक्रमण से अछूती नही रह रूकी है। **''तीसरी ऑख''** के रूप में टी.वी.इन्टरनेट और प्रिन्ट मीडिया ने हमारे एकान्त को हमसे छीन लिया है। टी.वी. और रेडियो के अन्तहीन प्रसारण पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में लिये बैठे है। इन्टरनेट के फैलते जाल–संजाल ने अपेक्षित – अपनपेक्षित सूचनाओं का वमन पढ़े – लिखों के सामने करना शुरू कर दिया है। समाज का लगभग प्रत्येक व्यक्ति अपेक्षित – अनपेक्षित सूचनाओं की इस आंधी से उड़ता हुआ चमत्कृत हो रहा है।

टी.वी. ने हमारा सामाजिक जीवन तार–तार कर दिया है। हमसे हमारी शामें और चौपालें छीन ली है। हमें अपने – अपने समूहों से बलपूर्वक उठाकर अपने – अपने एकान्त में जीने को विवश बना दिया है। मनोरंजन के नाम पर आधुनिक दृष्य माध्यमों ने हमें जो कुछ दिखाया और परोसा है वह कितना तार्किक और अतार्किक है, यह निर्णय करने में हम समर्थ नहीं रहे है, और बाजार का हथियार का माध्यम टी.वी. बना हुआ है। कैसी विडम्बना और त्रासद स्थितियों में हम जी रहे हैं कि हम हमारी इच्छाओं और रूचियों के मालिक भी नहीं रहे, हमारी त्रासदी यह है कि हमारी रूचियों और इच्छाओं का स्वामी **''दृश्य माध्यम'' बन बैठा।**

मनोरंजन की उद्देश्य सिद्धि के लिये हम टी.वी. खरीद कर लाये थे कि यह हमारी थकान को कम करके हमें मानसिक, शारीरिक शांति प्रदान करेगा, परंतु हाय रे हत्भागी हम।! उसने हमें कहीं का भी नहीं छोड़ा। इसने भाई को भाई से पड़ौसी को पड़ौसी से, गॉव शहर को चौपाल और हताई से, खिलाड़ी को खेल से, सखि को सहेली से, पति को पत्नी से, बालक को बचपन से और मॉ–बाप से , पाठक को पुस्तकों से, वृद्धों को मंदिर से, देवालयों से यानि की सबको सबसे काट कर कमरे में बन्द करके रख दिया। हमारा सामूहिक और सामाजिक जीवन छिन्न – छिन्न करके रख दिया कमबख्त बुद्धुबक्से टी.वी. ने । अब हम शिकायत करें भी तो किससे, क्योंकि इसके मुरीद भी तो हम हमारी ही इच्छा से बने थे। हां अब हम इसके लगभग गुलाम बनकर रह गये है, यह हमारी विवशता है।

सुधि पाठकों! मैनें थोड़ी देर पहले आपसे टी.वी. या दृश्य – श्रव्य या मुद्रित माध्यमों के प्रसंग में बाजारी शक्तियों की चर्चा की है। इस संदर्भ में आपसे थोड़ी चर्चा और करना चाहूँगा – जरा देखिये तो सही कि क्या हम सब बाजार के आक्रमण से पीड़ित और ग्रसित तो नहीं होकर रह गये है? बिलकुल ''बाजार'' से पीड़ित होकर रह गये हम, और आप सब। शाहरूख खॉन के कहने से आपके बच्चे कोका – कोला नहीं मांग रहे है? तेज गति से दौड़ती कारें और मोटर साईकिलें आपके बच्चों की हसरत नहीं बन गयी? अन्तरंग क्षणों में आपके शयन कक्ष में **''मोर डोटेड कामसूत्र''** कन्डोम की उपस्थिति अनिवार्य नही हो गयी? जस्ट फिफ्टी– फिफ्टी बिस्कुट के दीवाने क्या आप नहीं बना दिये गये? घर में कूट– पीसकर, छान– पौंदकर तैयार मसालों को क्या एम.डी.एच. मसालों ने दरवाजा नहीं दिखा दिया? सात दिन में सांवले रंग को गौरे रंग में बदल डालने के लिए क्या आपने पॉण्डस, लक्स, इमामी, नहीं खरीद डाले? बिन्दिया, झुमके, ब्रा–पेन्टीज, नेल पालिश, हेयर डाई, हेयल आयल, हेयर रिमूवर, काजल, सेन्डिल, क्रीम, पाऊडर आदि आदि न जाने क्या – क्या आपके हमारे घरों की महिलाऐं खरीदने नहीं लग गयी? गर्ज यह है कि मैं क्या – क्या आपको गिनाऊँ कि बाजार कहां नहीं आ गया, हमारी जिन्दगी में अपरिहार्य होकर? उत्तर होगा– यत्र तत्र सर्व?! मैं दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूँ कि जीवन में आद्यन्त बाजार की घुसैठ हो गयी है। सवाल यह उठना चाहिए कि उत्पादों की इस बाढ़ को जिसे हम प्रिन्ट मीडिया और टी.वी. के द्वारा आती हुई देख रहे हैं, अचंभित हो रहे है, आखिर इसके पीछे नियंत्रक शक्तियां कौनसी है? उत्तर बड़ा सहज है कि इसके पीछे बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और है उनकी अथाह दौलत सत्तासीन सरकारों का सहयोग– समर्थन पाकर काम कर रही है। धन–दौलत का अजस्त्र सोता इन उत्पादों का आधार है। ये शक्तियां केवल अधिक से अधिक मुनाफे को अपना लक्ष्य बना कर भारत जैसे विकासशील देशों में अपना रूप बदलकर प्रवेश कर चुकी है। सरकारें इनकी पूंजी के आगे कठपुतली मात्र बनकर रही गयी है। आम आदमी देखता तो कोई दृश्य–बिम्ब है और उठता किसी मल्टीनेशन्स के उत्पाद को खरीदने की इच्छा लेकर। यही है वह आक्रमण जिससे हममें से कोई भी बच नहीं पा रहा है।

दृश्य माध्यम सामाजिक धारावाहिकों के नाम पर जो कुछ हमें दिखा रहे हैं, वह सब हमारे समाज की असली और वास्तविक तस्वीकर नहीं है, जो कुछ परिवार और समाज के नाम पर हमारे सामने परोसा जा रहा है, वह तो एकदम अवास्तविक है। आप किसी भी धारावाहिक को देख लिजिए सास–बहू के वहीं सनातन झगड़े, वो ही सौतन – प्रसंग, पर स्त्री और पर – पुरूष गमन, सम्पत्ति हड़पने के अनवरत षड़यंत्र आदि प्रसंग अपने फूहड़ अंदाज में टी.वी. के परदे पर नित्य प्रसारित हो रहे है। फूहड़ता की इस भीड़ में एकाध अच्छे सीरियल अगर आ भी रहे हैं, तो ये आटे में नमक मात्र ही है। जिन घरों को ये टी. वी. सीरियल हमें दिखा रहे हैं, वे राजमहलों की तरह भव्य है, पात्र सुन्दर और गुदाज शरीर वाले है। नारियां कीमती वस्त्रों में, आभूषणों और सौन्दर्य प्रसाधनों से लदी–फदी है, रात–दिन पर पुरूष पर स्त्री में रत हैं, रात– दिन एक दूसरे के विरूद्ध षड़यन्तों में लिप्त

ये घर कैसे घर है? क्या घर ऐसे ही होते है? क्या नारी – पुरूष का उद्देश्य एक दूसरे का विरोध करना मात्र और ''परगमन'' ही रह गया है? क्या जातिवाद, गरीबी, छुआछूत, शोषण, अन्याय, बेरोजगारी, सामाजिक चेतना आदि इस देश से विदा हो गये है? अनेक प्रश्न दृश्यमाध्यम के दर्शकों के मन में पैदा होते हैं। हमें सोचना चाहिए कि समाज के नाम पर क्या ऐसा समाज ही रह गया है अब? उत्तर होगा– नहीं, एकदम नहीं। इसी संदर्भ में एक बात ओर कहना चाहूँगा कि **''चाक्षुक माध्यमों''** की इस आंधी में सबसे ज्यादा दोहन अगर किसी का हुआ है तो वह हुआ है नारी का। टी.वी. माध्यम से अगर दलित– उपेक्षित और वंचित वर्ग कुटिलतापूर्वक बाहर कर दिया गया है तो नारी भी पद दलित और **'जिन्स'** के बतौर ही प्रस्तुत की जा रही है। नारी एक **''जिन्स''** के बतौर इस्तेमाल होकर खरीदी–बेची जा सकने वाली वस्तु में तब्दील होकर रह गयी है।

अब मैं थोड़ी चर्चा चाक्षुक माध्यमों के उजले पक्ष की भी करना चाहूँगा। मेरा विश्वास है कि चाक्षुक माध्यम बड़े और सामाजिक – आर्थिक – राजनैतिक परिवर्तन के वाहक या माध्यम बन सकते थे क्योंकि इन माध्यमों की पहुँच दुनिया के हर कोने, हर व्यक्ति तक है। गरीबी, शिक्षा, सामाजिक असमता, नारीगत समस्याऐं, दलित समस्याऐं, कृषि, विज्ञान, आदि के क्षैत्र में आमूल–चूल परिवर्तन के वाहक ये माध्यम बन सकते थें, बशर्ते कि सरकारों के पास सामाजिक – आर्थिक – राजनैतिक परिर्वतन का कोई ठोस ''विजन'' होता। लगता है कि मनोरंजन के नाम पर अपसंस्कृति का प्रसार – प्रसार और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा उत्पादित सामानों का विक्रय मात्र ही चाक्षुक माध्यमों का एक मात्र लक्ष्य है। सत्ता और पूँजी के तंत्र तले ये माध्यम भी अपना वास्तविक रूप – स्वरूप और उपयोगिता खोते गये है। जहॉ इनकी पहुँच व्यापक और सरोकार गहरें एवं विस्तृत एवं परिवर्तन कामी होने चाहिए थे, वहॉ ये पूँजीपतियों के **''टूल''** मात्र बन कर रह गये है। जरा गौर कीजिए कि वर्तमान में किसी टी.वी. सीरियल को आज से सौ पचास साल बाद के लोगों को दिखाया जाये तो क्या वे जान सकेंगे कि भारत में कितनी गरीबी, बेरोजगारी, जातिगत, वैषम्य , छुआछूत, दलित– उपेक्षा, दलित चेतना और आर्थिक विपन्नता थी। हरगिज नहीं क्योंकि टी.वी. के परदें से गरीब और गरीबी बाहर है, सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने वाली चिंता बाहर है, आर्थिक अभावों से जूझते लोग बाहर है, बेरोजगार बाहर है, सामाजिक सरोकार बाहर है। हॉ! साम्प्रदायिक ताकतें, मंदिर– निर्माण और रामसेतु यात्राऐं, संस्कारों के नाम पर जड़ता'बॉटते निठल्ले साधू सन्यासी लोगों की पराश्रयी जमात कुटिल और वैष्णवी मुस्कानों के साथ हाजिर है, कर्म की प्रतिष्ठा करते चरित्रों के स्थान पर आर्थिक पाखण्ड और भाग्यवाद को पालते पोषते संत मौजूद है। सामाजिक समरसता सिरे से गायब है और मौजूद हैं, नरेन्द्र मोदी जैसे अट्टहास करते दम्भी नेताओं के चेहरें, धार्मिक यात्राओं के , रथ यात्राओं के अन्तहीन रेले मौजूद है। गायब है बन्द हो चुकी मिलों के बेरोजगार मायूस चेहरे, जन आन्दोलन और प्रतिरोधी शक्तियां सिरे से गायब है, दलित अस्मिता के प्रश्न गायब है क्योंकि ये सब माल बेचने के माध्यम नहीं बन सकते।

संक्षेप में कहना चाहता हूँ कि चाक्षुक माध्यमों पर **''माल''** बनकर माल बेचती नारी देह है या सामाजिक – पारिवारिक धारावाहिकों के नाम पर असामाजिक –गैर पारिवारिक हरकतें करते पात्र है और चौबीसों घन्टे सनसनी बॉटते न्यूज चैनल्स मौजूद है। सब कुछ मौजूद है **'जन'** और जन की पीड़ाओं को छोड़कर। फिर भला इस सामग्री के साथ हमारे लिए टी.वी. प्रासंगिक कैसे हो सकता है? नहीं होना चाहिए और नहीं हो सकता परन्तु टी. वी. हमारे लिए प्रासंगिक ही नहीं अपरिहार्य हैं, यहीं विडम्बना है।

मीडिया के प्रसंग में अब मैं थोड़ी सी चर्चा प्रिन्ट मीडिया की भी करना चाहूँगा क्योंकि प्रिन्ट मीडिया ने भी शिक्षित समुदाय को वर्तमान में बेहद प्रभावित कर रखा है। अनेक प्रकार की पत्रिकाऐं और अखबार बाजार में मौजूद है। अखबारों ने भी समाज को दिशा दी थी ऐसा इतिहास में दर्ज है एवं पत्रिकाओं ने समाज परिवर्तन की दिशा में न्यूनाधिक योगदान दिया था। गांधी जी की सदारत में निकलने वाला पत्र **'हरिजन'** स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रमुख पत्र था। जिसमें दलितोद्धार से संबंधित बातें छपा करती थी। इस पत्र के माध्यम से गांधी वंचितों–दलितों से संबंधित अपने विचार प्रस्तुत किया करते थे। वर्तमान समय में योगदान की यह विरासत कमों बेस पत्र–पत्रिकाओं से नदारत है। हमें स्वीकार करना चाहिए कि नवीन तकनीक के आगमन से पत्र–पत्रिकाऐं लुभावनी, शक्ल सूरत वाले तो बने हैं परन्तु गुणवत्ता की (सामाजिक दृष्टि से) दृष्टि से समाज और सामाजिकों के लिये ये बहुत ज्यादा उपयोगी नहीं रह गये है। पत्र सनसनी परोसने का माध्यम बनकर रह गये हैं, वहॉ अब सृजनशीलता, सामाजिक सरोकारों और दलितों–वंचितओं के विमर्श के लिये कोई स्थान रिक्त नहीं है। पत्र–पत्रिकाओं में विज्ञापनों, अधनंगी–नंगी नारी देहों की भरमार है। कुछेक हिन्दी पत्र – पत्रिकाऐं जरूर समाज से, उसके सरोकारों से बावस्ता है परन्तु इनकी संख्या सीमित है और ये भी पूँजीपति घरानों से या उनकी आर्थिक मदद से प्रकाशित हो रही है अतः सामाजिक परिवर्तन इनका भी लक्ष्य नहीं हो सकता। हॉ कुछेक पत्रिकाऐं जरूरत अपवाद है जिनमें सामाजिक सरोकारों की चिन्ताऐं अब भी मौजूद रहती है। इनमें छपने वाले लेखक, स्त्री, दलित, पिछड़ों आदि से न केवल सम्बंधित है अपितु स्त्री विमर्श और दलित विमर्श में रत है।

निष्कर्षतः मैं कहना चाहूँगा कि जब धर्म कुटिल व्याख्याऐं लेकर उपस्थित हो रहा हो। धर्माचार्य, राजनैतिक दलों और दक्षिण पंथी नेताओं के भोंपू बन गये हों, प्रतिपक्ष अपने सत्ता प्राप्ति के लक्ष्य को पूरा करने के लिए मंदिर–मस्जिद – रामसेतु एवं परमाणु करार को एक मात्र आधार मान कर दिलों में नफरतों की चीन की दीवार से भी ऊँची दीवारें खड़ी करने में लगा हो, धर्म की अप्रासंगिक हो चुकी पताकाऐं फिर चारों और लहराने – फहराने लगी हों, वर्ण व्यवस्था की पुनः वकालत की जाने लगी हो, आउटडेटेड हो चुकी जाति व्यवस्था की जड़ों में फिर से पानी डाला जा रहा हो, दलितों पर, महिलाओं पर ईसाइयों पर फिर अत्याचार किये जाने लग हों, सम्प्रदायवाद को फिर झाड़ पौंछकर चमकाया जा रहा हो, प्रगतिशील शिक्षा व्यवस्था को नागपुर मुख्यालय और भगवा बिग्रेड का डर सताने लगा हो, भारतीय सम्यता और संस्कृति के आवश्यक गुण सहिष्णुता की

बरबर हत्या की जा रही हो और समन्वयवादिता एवं सहिष्णुता की लाश पर विनय कटियार, उमा भारती, ऋतबंरा, अशोक सिंहल, प्रवीण तोगड़िया, नरेन्द्र मोदी अट्टहास कर रहे हों, चुन चुन कर विजातीय एवं धर्म विशेष के लोगों पर गुजराती शैली में आक्रमण हो रहे हों, मानवता – स्त्री और दलित जीवन की भीख मांग रहे हों, तलवारों, छुरों, त्रिशुलों की चमक प्रतिधर्मी लोगों को सहम जाने को विवश बना रही हो, हर प्रगतिशील – गतिशील कदम का एक विचाराधीन विशेष के अनुषंगी संगठनों द्वारा उग्र विरोध किया जा रहा हो, शिक्षा और शिक्षण संस्थाओं में साम्प्रदायिकता का जहर घोला जा रहा हो, पूँजीपतियों की इच्छाओं के अनुरूप सरकारी सम्पत्तियां कौडियों के मौल लुटाई जा रही हो, बेरोजगारी, महंगाई, भ्रष्टाचार, सुरसा– मुँह के समान विकराल रूप ग्रहण कर रहा हो, देश के महत्वपूर्ण निर्णय संतों की निठल्ली परजीवी जमात पर छोड़े जा रहे हों, लघु उद्यासेगों की कीमत पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विजय का अट्टाहास कर रही हों, शिक्षा पूंजीपतियों के हाथों मुक्त छोड़ दी गयी हो, दलितों– वंचितों के लिए अच्छे शिक्षण संस्थाओं के दरवाजे बंद किये जा रहे हों, चारों और सिनेमा टी.वी. से लेकर रेम्प और पत्र – पत्रिकाओं के पन्नों पर नंगी नारी देहों को परोसा , बेचा, खरीदा जा रहा हो, मशीन और कम्प्यूटर के आगे माननीय हाथों की श्रमशीलता नष्ट की जा रही हों, चारों और निराशा का घटाटोप– अंधकार फैला हुआ हो तब आशा की किरणें अगर कहीं से आ सकती है तो वह केन्द्र है मीडिया का। मीडिया की सभी प्रणालियों और प्रकारों को वर्ग विशेष की कुत्सित मानाओं– लालसाओं की तुष्टि के स्थान पर वह सब कुछ दिखाना छापना होगा जो रचनात्मक है, प्रेरणास्पद रहे और वास्तविक है अन्यथा चाहे टी.वी. हो या प्रिन्ट मीडिया समाज में इनको अविश्वसनीयता की दृष्टि से देखा जाता रहेगा।